ऋषि मैत्रेय

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

भूमिका- ऋषि और वैज्ञानिक दोनों ही विश्व के रहस्य की व्याख्या करते हैं पर ऋषियों का दर्शन इस ध्रुव विश्वास से भरा है कि यह 'व्यक्त' विश्व किसी 'अव्यक्त' मूल स्त्रोत से उदगत हुआ है।

वह 'अव्यक्त' मूल इस 'व्यक्त' की सृष्टि करके इसमें अनुप्रविष्ट हो रहा है। वह विराट है अणोरणीयान, महतो महीयान, अनन्त अव्यक्त और अक्षर तत्व है। अनन्त से यदि अनन्त घटाते चले जायें तो भी वह अनन्त ही रहता है।

यह अक्षर पुरुष प्राण प्रधान या क्रिया प्रधान है। अक्षर पुरुष अंशतः अपने स्वरूप में भी बना रहता है और उसी का अंश भूतों के रूप में भी विकसित होता जाता है। भूतों के रूप में विकसित होना ही संसार की उत्पत्ति है। कहा जा सकता है कि भूत रूप में परिणत क्षर पुरुष ही संसार है।

उस क्षर पुरुष की भी अक्षर की सहायता से पाँच कलाएं बनती हैं, जिनके नाम हैं प्राण, आप, वाक अन्नाद और अन्न। प्राण का नाम 'ऋषि' भी है। प्राण अति सूक्ष्म कला है और अन्य कलाओं की जननी है।

सूक्ष्म कला से सूक्ष्म जगत बनता है और स्थूल कलाओं से स्थूल। सूक्ष्म जगत के मुख्य तत्व ऋषि, पितृ, देव, असुर और गंधर्व

हैं। जगत के मूल तत्व भी ऋषि, पितृ देव आदि कहलाते हैं।

उपरोक्त प्राण रूप ऋषि हैं। तारा मण्डल में ध्रुव के चारों ओर घूमने वाले बड़े सात तारे भी ऋषि यथा 1. मरीचि, 2. वसिष्ठ, 3. अंगिरा, 4. अत्रि, 5. पुलस्त्य, 6. पुलह 7. ऋतु शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। मनुष्यों में ऋषि तीन प्रकार के हैं सृष्टि प्रर्वतक, गोत्र प्रर्वतक और मन्त्र प्रवक्ता।

विराट से मनुष्य तक की सृष्टि प्रथक विषय है, अत: उसमें विस्तार से जाने का यह स्थान नहीं है। मैत्रेय प्राण-ऋषि से गोत्र प्रर्वतक मैत्रेय ऋषि तक सृष्टि यात्रा स्पष्ट कर मैत्रेय वंश का विवरण ही यहां अभिष्ट है।

उपरोक्त ऋषि निरूपण ऋग्वेद संहिता शतपथ ब्राहमण के अनुसार है। पुराणों द्वारा इसकी पुष्टि होती है।

मैत्रेय और वेदव्यास का एक प्रसंग अत्यन्त प्रेरक है। महर्षि कृष्ण द्वेपायन व्यास अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। भारत के तीर्थों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

काशी में उस प्राचीन काल में मैत्रेय नाम के प्रसिद्ध रईस थे। वह स्वस्थ सुन्दर शरीर, सर्व गुण सम्पन्न तथा लक्ष्मी के विशेष कृपा पात्र थे। स्वयं विद्वान थे और विद्वतजनों का हार्दिक सम्मान करते थे। दयालु, यशस्वी और आदर्श अतिथि सेवक थे। मैत्रेय ऋषि मुनियों की सभा में बैठे थे कि महर्षि वेद व्यास वहां आ गये। मैत्रेय ने निवेदन किया। भगवान! मैं अपनी तपस्या जनित सौभाग्य ही मानता हूं कि आप के दर्शन हुए। व्यास जी ने उत्तर दिया यहां आकर मुझे अतिवाद और अतिछन्द दोनों प्राप्त हुए। मैं प्रसन्न हूं। आप जैसे श्रीमंतों को जब धन प्राप्त होता है तो उससे दान, यज्ञ और सुख भोग करते हैं अपने

सौन्दर्य, धन और यौवन का आपको तनिक भी अभिमान नहीं है। यह प्रभु की असीम कृपा है। आप कुलीन, बुद्धिमान, शास्त्रवेत्ता और दयालु हैं आप तरूण हैं और व्रतधारी हैं। आप इसी प्रकार स्वधर्म पालन में लगे रहें और गृहस्थों के लिये जो सर्वोत्तम तथा मुख्य कर्तव्य हैं, उन्हें आप ग्रहण करें।

अतिथि को गौरवान्वित करते हुए उसकी इच्छा के अनुसार सत्कार करना 'अतिछन्द' कहा जाता है अपनी वाणी से देवस्वरूप अतिथि के गुणों का प्रकाशन या उनकी अभ्यर्थना, प्रशंसा या उनके गुणगान को 'अतिवाद' कहते हैं। महर्षि वेदव्यास जब जाने लगे तो मैत्रेय ने उनकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की- भगवन! आप मंगल प्राप्त करें। हे विद्वन्! मैं आपको प्रणाम करता हूं और अभिवादन करता हूं।

यह काशी की प्राचीन रईसी और आतिथ्य परंपरा का नमूना है। उपरोक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि मैत्रेय महर्षि के वंशज उस समय काशी में थे।

एक किवदंती है कि जीवन की सांध्य वेला में व्यासजी उत्तराखंड में सरस्वती नदी के निकट का अपना आश्रम छोड़कर अपने सहस्त्र शिष्यों के साथ काशी आये। मां अन्नपूर्णा ने उनकी काशीवास की पात्रता की परीक्षा लेने का विचार किया। परिणाम स्वरूप काशी में व्यासजी और उनके शिष्यों को तीन दिनों तक भिक्षा नहीं मिली। इससे क्षुब्ध होकर उन्होंने शाप दिया कि काशीवास करने वाले को तीन पीढ़ियों को विद्या, धन और मोक्ष नहीं प्राप्त होगा।

इस पर भगवती अन्नपूर्णा रूष्ट हो गई और व्यासजी को काशी छोड़कर चले जाने को कहा। मां से क्षमा मांगने पर मां ने गंगा पार निवास करने तथा पर्व विशेष पर बाबा विश्वनाथ के दर्शनार्थ काशी आने की अनुमति दी।

अतः संभव है मैत्रेय के काशीवासी वंशज भी काशी छोड़कर उत्तराखंड की ओर चले गये हों क्योंकि तत्पश्चात् मैत्रेय ऋषि ने हरिद्वार क्षेत्र में भगवान कृष्ण के आदेश पर उद्धव को ज्ञान का उपदेश दिया, ऐसा प्रमाण है।

विदुर जी को भी मैत्रेय ऋषि ने हरिद्वार क्षेत्र में ही ज्ञान भगवान के आदेशानुसार दिया। इसका उदाहरण निम्नांकित है।

काल गणना

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के दसवें अध्याय में दसवें श्लोक में विदुरजी मैत्रेय जी से कहते हैं। आप ने श्री हरि की जिस काल नामक शक्ति का उल्लेख किया था, उसका विस्तार से वर्णन कीजिये। मैत्रेय ऋषि ने अगले दो श्लोकों में तो इतना ही उत्तर दिया कि त्रिगुणात्मक पदार्थ का रूपांतर करना ही काल का आकार है। स्वयम्, तो वह निर्विशेष, अनादि और अनन्त हैं। अव्यक्त मूर्ति काल को ही उपादान बनाकर सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है, परन्तु इसी स्कंध के ग्यारहवें अध्याय में मन्वंतरादि काल विभाग का वर्णन करते हुए जिस विस्तार से उन्होंने परमाणु ब्रहमाण्ड राशियों सूक्ष्म एवं परम महान काल की व्याख्या की है, उसे चमत्कारिक ही कहा जायेगा।

मैत्रेय जी बताते हैं कि जो काल पदार्थ की परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्था में व्याप्त रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु काल है और जो सृष्टि से प्रलय पर्यन्त उसकी सब अवस्थाओं का भोग करता है, वह परम महान है।

पदार्थ का जो सूक्ष्मतम अंश है, जिसका और विभाजन नहीं किया जा सकता तथा जिसका अन्यों से संयोग भी नहीं हुआ, उसे

'परमाणु' कहते हैं। यह परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है, उस पदार्थ की समग्रता का नाम 'परम महान' है।

पदार्थ के इस सूक्ष्मतम और महत्तम स्वरूप के सादृश्य से परमाणु आदि अवस्थाओं में व्याप्त हो रहे पदार्थों को भोगने वाले सृष्टि करने में समर्थ काल की भी सूक्ष्मता और स्थूलता महानता का अनुमान किया जा सकता है।

त्रसरेणु : द्वार से आई सूर्य किरणें

दो 'परमाणु' मिलकर एक 'अणु' बनाते हैं और तीन अणु मिलकर एक 'त्रसरेणु' का निर्माण करते हैं। त्रसरेणु के आकार की कल्पना देते हुये मैत्रेय जी कहते हैं, त्रसरेणु किसी द्वार की झिरी में से आयी हुई सूर्य की किरणों के प्रकाश में उड़ता देखा जा सकता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओं का भाग करने में जितना समय लगता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं। इससे सौ गुणा काल 'वेध का तत्व' होता है। तीन तत्व को एक निमेष की एक क्षण कहते हैं, पांच क्षण की एक काष्ठा और पन्द्रह काष्ठा का एक 'लघु' होता है। पन्द्रह लघु की एक 'नाडिका' होती है तथा एक 'मुहूर्त' में दो नाडिकाएं होती है। दिन के घटने बढ़ने के अनुसार छः या सात नाडिका का एक 'प्रहर' होता है। जो मनुष्य के दिन या रात का चौथा भाग होता है, उसी को 'याम' भी कहते हैं। चार चार प्रहर के दिन और रात होते हैं। पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष होता है। पक्ष दो होते हैं, शुक्ल और कृष्ण।

शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष जिससे एक मास होता है। मास पितरों का एक दिन-रात है। दो मास की एक ऋतु तथा छः मास का एक अयन होता है। अयन के उत्तरायण और दक्षिणायन दो भेद हैं।

दोनों अयन मिलाकर मनुष्यों का एक वर्ष होता है, जो देवताओं का एक दिन-रात होता है। देवताओं के सौ वर्ष से एक चतुर्युगी होती है। जिनमें सतयुग में चार, त्रेता में तीन, द्वापर में दो तथा कलियुग में एक सहस्त्र दिव्य वर्ष होते हैं। जिस युग में जितने हजार दिव्य वर्ष हैं उसमें दो गुणे सौ वर्ष उसकी दोनों संध्यायों में होते हैं, सूर्यास्त और सूर्योदय के समय। इस प्रकार कलियुग में बारह सौ दिव्य वर्ष या चार लाख बत्तीस हजार मानव वर्ष होते हैं।

इस प्रकार भगवान कृष्ण का अवतार चार जुलाई 3251 की ईसा पूर्व में हुआ और तिरोधान फरवरी 3125 ई० पूर्व में हुआ।

परमाणु ↓	याम ↓
अणु ↓	दिन ↓
त्रसरेणु ↓	रात ↓
त्रुटि ↓	पक्ष ↓
लव ↓	शुक्ल - कृष्ण ↓
निमेष ↓	मास ↓
काष्ठा ↓	ऋतु ↓
लघु ↓	अयन ↓
नडिका ↓	उत्तरायन - दक्षिणायन ↓
मुहूर्त ↓	वर्ष ↓
प्रहर ↓	

मनुष्य संसार का प्राणी है। संसार शब्द का अर्थ ही संसरतीति संसारः, जो सदा सरकता रहे, अर्थात एक दशा से दूसरी दशा में जाता

रहे। इसी से कहते हैं, संसार परिवर्तनशील है, पर इसी परिवर्तन को आज के वैज्ञानिक उन्नति कहते हैं, विकासवाद कहते हैं और विचारशील दार्शनिक अवनति कहते हैं और ह्रासवाद मानते हैं। बात एक ही है, पर दृष्टि भेद से दोनों परस्पर विरोधी लगती हैं।

भारत सदा ही अध्यात्मवादी और अधिदैववादी है। उसका लक्ष्य है अर्न्तजगत की उन्नति या मानसिक उन्नति। पाश्चात्य विद्वानों का लक्ष्य है बर्हिजगत की उन्नति या भौतिक उन्नति। मानसिक उन्नति तभी कही जाती है, जब यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह) नियम (शौच, सन्तोष, तप, ईश्वर-भक्ति) का पूर्ण पालन होता हो, राग-द्वेष और उनकी मूलभूत ममता संसार में बहुत कम हो, मनुष्यों की आवश्यकताएं बहुत कम हों और एकता का भाव बहुत व्याप्त हो। आधिदैविक उन्नति भी अर्न्तजगत के देवता-तत्व की विचारधारा के अधिक प्रवृत होने पर कही जा सकती है। उसका प्रभाव भी मन पर पड़ता है। मन की उस स्थिति में यत्न विशेष से अनेक प्रकार की मानसिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं। संकल्प को पूर्णता, पूर्ण आयु उस दिशा में एक स्वाभाविक बात है, यह योग-दर्शन का सिद्धान्त है।

विज्ञान पूर्व में भी था और अब भी हैं। ढाके की मलमल, और रोपेड के ताले जो चोर पकड़ते थे आज तक नहीं बन सके। कहते हैं आगरे के किले में एक ऐसा दीपक था, जो बिना तेल डाले ही न जाने कितने वर्षों से जल रहा था उसमें वैज्ञानिक क्रिया का ऐसा यंत्र लगाया गया था, जो धुएं के रूप में निकले को तेल रूप में पुनः परिणत कर देता था। उसे जब एक बार अपने स्थान से हटा दिया तब वह बुझ गया और फिर वैसा न जल सका।

आध्यात्मिक और आधिदैविक विज्ञानों के आधार के बिना आदि भौतिक विज्ञान अधूरा है। वैदिक विज्ञान बताता है कि प्रत्येक वस्तु में उसकी प्राण-शक्ति व्याप्त है। प्राण के बिना कोई भी वस्तु ठहर नहीं सकती। वह निष्प्राण हो जाती है। बल और विधारण प्राण की ही शक्ति है। बिना प्राण के न उस वस्तु में बल रहेगा, न उसका विधारण होगा। वह चूर-चूर होकर गिर जायेगी। वह प्राण उस वस्तु के भीतर भी रहता है और बाहर भी फैलता है।

प्रत्येक पार्थिव (पृथ्वी तत्व के बने) पदार्थ में आग्नेय प्राण रहता है। अग्नि ही पृथ्वी का प्राण है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो ज्ञान प्राप्त करते हैं और उसका अनुबन्धन करते हैं, अर्थात् औरों को पढ़ाते हैं, वे ही ऋषि कहलाते हैं।

विशुद्ध प्राण, अर्थात् दो तत्वों का सम्मिश्रण जहां न हो, ऋषि नाम के प्राण कहे जाते है। मिश्रण से जो प्राण बनते है, वे देव नाम के प्राण कहे जाते हैं। ये ऋषि, देव, पितृ आदि सूक्ष्म जगत के तत्व हैं। यह बात कही जा चुकी है।

आदि के तत्वों की उत्पत्ति और उस का निरोध अर्थात लय सदा होता रहता है। पुराणों में ऋषि वंश या राजवंश का जो वर्णन प्राप्त होता है, उस का आरंभ वैवस्वत मन्वन्तर के आरंभ से ही होता है। इतने समय में सत्ताईस चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी हैं और अट्ठाईसवें चतुर्युगी के भी तीन युग व्यतीत हो गये हैं। वर्तमान में चौथा कलियुग चल रहा है।

हम अग्नि को तब तक प्रत्यक्ष नहीं देख सकते जब तक वह काष्ठ (स्थूल, भूत) के माध्यम से प्रकट न हो। भूत को क्षर कहते हैं

और उस क्षर के भीतर निवास करने वाले अक्षर को देव कहते हैं। 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोअक्षर उच्चते!'

अस्यवाणीय सूक्त में कहा है कि अक्षर से ही क्षर का जन्म होता है - 'ततः क्षरत्यक्षरम, अर्थात देव या शक्ति से ही भूत का निर्माण होता है। इस की अभिव्यक्ति तीन रूपों में हो रही है। एक वृक्ष-वनस्पति, दूसरे पशु-पक्षी और तीसरे मानव इन तीनों में जो शक्ति-तत्व है, उसे प्राणाग्नि कहते हैं। प्राण या जीवन चैतन्य का ही रूप हैं जो विश्व का सबसे महान रहस्य है।

उपरोक्त तथ्य इसीलिये दिये गये हैं कि पाठक स्पष्ट समझ सकें कि मैत्रेय को प्राण कहा गया, फिर ऋषि बताया और तब मनुष्य रूप में मैत्रेय की सन्तान कैसे हैं? इसी गुत्थी को स्पष्ट करने के लिये काल (समय) की ओर भी संकेत दिया गया है।

जगत की पूर्वावस्था में जो विद्यमान थे, उन के संबंध में शतपथ ब्राह्मण के छटे काण्ड के आरंभ में ही विस्तार से कहा गया है। वे ही ऋषि प्राणियों में अध्यात्म-रूप से प्रविष्ट होते हैं। ये ही ऋषि अध्यात्म में भिन्न-भिन्न मनोवृतियों के कारण बनते हैं। ये ही ऋषि आगे उत्पन्न होने वाले जगत के मूल तत्व हैं। विशुद्ध प्राण, अर्थात दो तत्वों का सम्मिश्रण जहां न हो, ऋषि नाम के प्राण कहे जाते हैं। मिश्रण से जो प्राण बनते हैं, वे देव नाम के प्राण कहे जाते हैं। ये ऋषि, देव, पितृ आदि सूक्ष्म जगत के तत्व हैं, यह बात कही जा चुकी है।

ऋषि वे भी कहे जाते हैं, जिन्होंने ईश्वरानुग्रह से विद्याएं प्राप्त की और उन्हें वेद मन्त्रों के रूप में हमें दिया। वेदकर्तव्य के संबंध में तीन प्रकार के प्रधान मत शिष्ट-सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। इन ऋषियों के

तीन भेद हैं।

(क) सृष्टिप्रवर्त्तक,

(ख) मन्त्र दृष्टा और मन्त्र प्रवर्त्तक और

(ग) गोत्र प्रवर्त्तक।

सृष्टि प्रवर्त्तक यद्यपि प्रथम प्रकार के ही ऋषि होते हैं, और अपने वंश विस्तार द्वारा अवान्तर सृष्टि के प्रवर्त्तक भी यह माने जाते हैं। वैदिक ग्रन्थों में विस्तार से इस की चर्चा है।

अग्नि और सोम दो तत्वों से मिलकर जगत बनता है। श्रुतियों में यज्ञ को पूर्ण कहा गया है। अत: यज्ञ का अधिकार आधे प्राणि को नहीं होता। इस दृष्टि से पुरूष आधा भाग और उसका दूसरा आधा भाग अर्धांग्नि उसकी स्त्री है। पूर्ण होने पर ही यह यज्ञ का अधिकारी बनता है और तभी संतान (नये प्राणी) उत्पन्न करने की शक्ति उनमें होती है।

स्पष्ट है कि पुरुष और स्त्री का अभिप्राय अग्नि और सोम से ही है। यही अग्नि और सोम मिलकर विराट मण्डलों को उत्पन्न करते हैं। उनमें आत्मा और प्राण रूप से अग्नि रहती हैं और सोम पशु रूप रहता है।

अग्नि मुख्य रूप से सूर्य है, जिसका एक नाम मित्र है। मित्र से उत्पन्न हो वह मैत्र और मैत्र से उत्पन्न ही मैत्रेय कहलाया।

मैत्रेय वंश परम्परा के लिये इला की कथा महत्वपूर्ण है। इला वस्तुत: आध्यात्मिक अथवा यज्ञ-सम्बंधी तत्व हैं। शतपथ ब्राह्मण आदि में धृतपदी गौ आदि के रूप में इला का वृतान्त आध्यात्मिक अथवा

अधि यज्ञ-पृष्ठ भूमि पर समझाया गया है, पर इला का मानवीय रूप वाला आख्यान भी हैं।

वर्तमान में (विक्रम सम्वत 2059 एवं 2002 ई०)। श्वेत बाराह कल्प का अठ्ठाईसवां कलियुग है। यह बात हमारे प्रत्येक दिन के संकल्प से स्पष्ट होती है जहां हम कहते हैं ''ब्राह्मणों द्वितीय परार्द्धे श्वेत वाराह कल्पे वैवस्तमन्वन्तरे कलियुगे, कलि प्रथम चरणे'' इत्यादि। (विस्तृत विवरण के लिये देखिये म०म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का ग्रन्थ पुराण-परिशीलन अध्याय ''काल-गणना।'')

अव्यक्त से व्यक्त की यात्रा में कहा जा चुका है कि काल (समय) का भी महत्व है, साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि ऋषि 'प्राण' भी हैं तथा गोत्र प्रवर्तक भी हैं। नाम, पदनाम, यशो नाम तथा वंश नाम भी होते हैं। इन सब के विस्तृत विवरण का यह स्थान नहीं है, परन्तु 'मैत्रेय' सूक्ष्म भी है और स्थूल भी अर्थात वह एक भी हैं और अनेक भी। वंश परम्परा के विवरण भी (इतिहास भी) पूर्ण नहीं मिल सकता, क्योंकि समय इतना लम्बा है कि ऐसा ज्ञान संभव नहीं है, अत: आदि काल से अब तक यदि संगति बैठती है तो यह मानना पड़ेगा कि वंश जीवन्त है अर्थात एक ही है। अत: कई बातों से यदि यह पुष्टि होती है कि मैत्रेय वंश की धारा अविछिन्न और एक ही है तो यह अत्यंत विशिष्ट बात होगी। मैत्रेय जी पुराणों के व्याख्याता ऋषि हैं। इनको 'मैत्रेय' इसलिये कहा गया क्योंकि यह मित्र के अपत्य हैं। श्रीमद्भागवत में इन्हें महर्षि पराशर का शिष्य और वेदव्यासजी का सुहृदय सखा बताया है। पराशर जी का निर्देश था कि विष्णु पुराण जो मैंने तुम्हें सुनाया है तुम कलिकाल के अन्त में शौनक को सुनाओगे।'

मैत्रेय ऋषि पूर्ण ज्ञानी और शास्त्र-मर्मज्ञ थे। भगवान कृष्ण ने सरस्वती नदी के तट पर प्रभास क्षेत्र के समीप अपने विशेष कृपा-पात्र मैत्रेय जी को सुपात्र मानकर ही अपना समस्त ज्ञान दिया और आदेश दिया कि यह ज्ञान विदुर को भी देना। यही सन्देश भगवान ने उद्धव जी के द्वारा भी मैत्रेय जी को दिया था। उपरोक्त से स्पष्ट है कि मैत्रेय जी चिरंजीवी हैं और आज भी किसी न किसी रूप में धरा पर रहकर अपना दायित्व निभा रहे हैं।

थियोसोफिस्ट डा० ऐनी बेसेन्ट ने भी सितम्बर सन् 1920 ई० में वाराणसी में सार्वजनिक भाषण में ऋषि मैत्रेय को जगतगुरु बताया है। बौद्ध (बुद्ध धर्म) के अनुयायी भी भगवान बुद्ध के पश्चात ऋषि मैत्रेय को ही वर्तमान बोधि सत्व मानते हैं। निखोलस रोहरिक ने इनकी एक मूर्ति उत्तरी तिब्बत में चीन की सीमा के निकट एक गुफा में बनाई है। सारनाथ के पुरातत्व संग्रहालय में आज भी 'मैत्रेय' की मूर्ति देखी जा सकती है। हिन्दू विश्वविद्यालय के संग्रहालय में भी 'मैत्रेय' की मूर्ति है। लद्दाख के सबसे बड़े बौद्ध मठ में भी 'मैत्रेय' की मूर्ति है, जो पूजी जाती है।

'इल' अथवा 'इला' का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण तथा कई पुराणों में मिलता है। रामायण के अनुसार शंकर जी के कोप भाजन इल को एक माह नारी (इला) के रूप में और पार्वती जी की कृपा के कारण एक माह इल (पुरुष) रूप में रहना होता था। पुराणों के अनुसार यह अवधि एक माह नहीं छः माह थी।

जहां रामायण में इल को प्रजापति कर्दम का पुत्र और वाहिल्क देश का राजा बताया है वहां पुराणों में वाहिल्क देश का राजा मानने पर

भी वैवस्वत मनु की एक मात्र पुत्री दस भाईयों वाली मानी गई है।

इला-चरित्र ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण, लिंग पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण एवं मनु-स्मृति में भी मिलता है।

पुराणों में जो कथानक इस संबंध में हैं, उनके अनुसार चार पक्ष बनते हैं।

1. बाल्हीक नगर का शासक 'इल' नाम का राजा था। वही पश्चात् स्त्री बना, इसलिये 'इला' कहलाया। स्त्री होने पर उसने लज्जा के कारण अपना वाल्हीक प्रदेश छोड़कर नये नगर प्रतिष्ठानपुर का निर्माण करा और वहीं रहने लगा।

2. प्रतिष्ठानपुर का राजा सुद्यम्न था जो बाद में स्त्री-भाव को प्राप्त कर 'इला' नाम से जाना गया और मृत्यु तक वहीं रहा।

3. इला इक्ष्वाकु आदि राजाओं की बड़ी बहिन थी। वह कन्या रूप में ही पैदा हुई थी, पीछे मित्र और वरूण को प्रसन्न कर उसने पुरूषत्व प्राप्त किया था। तत्पश्चात् सरकण्डे के वन में प्रवेश करने से वह पुनः स्त्री हो गई। कुछ समय पश्चात् अपने पुत्र पुरूरवा के प्रयत्न से उसे फिर पुरुष रूप मिल गया। इस कथानक के अनुसार दक्षिण प्रदेश का दण्डकारण्य में ही इस का राज्य था।

4. इला इक्ष्वाकु आदि की ज्येष्ठ भगिनी थी। उत्तराधिकार में उसे प्रतिष्ठानुपुर का राज्य मिला था। इसका सबसे छोटा भाई 'सुद्यम्न' था। वह वाल्हीकपुर का शासन करता था, परन्तु 'इला' स्त्री होन के कारण शासन-कार्य में दक्ष नहीं थी, अतः इक्ष्वाकु ने अपने छोटे भाई सुद्यम्न को इला के शासन-कार्य में सहायता के लिये कहा। वह सचिव के रूप में ही प्रतिष्ठानुपुर में रहकर शासन की देखभाल वहां करता था

और बारी बारी से वाल्हीकपुर का शासन करता और प्रतिष्ठानुपुर का शासन की देखभाल करता था।

उपरोक्त प्रथम तीन पक्षों से सिद्ध होता है कि 'ईला' और 'सुद्युम्न' एक ही हैं। पहिले जो 'सुद्युम्न' या 'इल' था, वही स्त्री होकर 'इला' कहलाया अथवा जो स्त्री 'इला' थी, वही पश्चात् सुद्युम्न हो गई।

चतुर्थ पक्ष के अनुसार 'इला' तथा 'सुद्युम्न' अलग अलग दो व्यक्ति थे। रामायण में पुरूरवा की उत्पत्ति इला से श्वेत गिरि के समीप, जो कार्तिकेय का जन्म स्थान है, बताया है और पुराणों में यह उत्पत्ति कनखल (हरिद्वार) के समीप कही गई है।

रामायण से यह भी पता चलता है कि प्राचीन काल में आवर्तनी नाम की एक विशेष विद्या ऋषियों में प्रचलित थी, जिसके द्वारा पूर्व अवस्था को प्राप्त किया जा सकता था।

यह तथ्य भी सर्वविदित है कि जो वृक्ष जितना पुराना होगा, उसकी उतनी ही अधिक शाखा होंगी। मैत्रेय गोत्र वंशज केवल उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों एवं वाराणसी में ही नहीं, अपितु हरियाणा, राजस्थान, कश्मीर, बंगाल और महाराष्ट्र में भी मिलते हैं, यह अलग बात है कि उच्चारण-भेद के कारण उनमें थोड़ा अन्तर आ गया है। उदाहरणार्थ बंगाल में मैत्रे, मोइत्रा, मैत्रा और महाराष्ट्र में म्हात्रे कहे जाते हैं यह भी शोध का एक विषय हो सकता है।

यूं भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान इस बात पर एक मत हैं कि सातवीं पीढ़ी तक जीन्स (गुण-सूत्र) बिल्कुल बदल जाते हैं, वैसे भेद, शाखा सूत्र एवं प्रवर भी इस भेद की किसी सीमा तक स्पष्ट कर सकते

हैं। श्री सियाराम मैत्रेय वाली वंशावली का उद्गम् (जहां तक ज्ञात है) हरिद्वार क्षेत्र और काशी दोनों से है। अत: यही मूल शाखा मानी जा सकती है। इसी मूल शाखा में महादेव शंकर के श्राप अथवा तीन पीढ़ी तक के श्राप की बात किंवदंती के कूप में अभी तक भी प्रचलित हैं। इसकी पुष्टि भृगुसंहिता से भी होती है।

सभी बौद्ध राष्ट्रों के सहयोग से दलाई लामा के संरक्षण में उत्तर प्रदेश के कुशीनगर में संसार की विशालतम प्रतिमा 'मैत्रेय बुद्ध' बनाई जा रही है जो आशा है सन् 2005 तक पूरी बन जायेगी। इसकी ऊंचाई पांच सौ फीट होगी। जिस मंच पर मूर्ति आसीन होगी उसके भीतर चार हजार लोगों के साथ बैठकर ध्यान करने की व्यवस्था होगी।

प्रतिमा शैली और वेशभूषा तिब्बती हैं, बैठने की मुद्रा से ऐसा आभास होता होगा कि वह सिंहासन पर बैठे हैं और उठकर चलने को तैयार हैं। तिब्बती बौद्ध मानते हैं कि मैत्रेय बुद्ध सुररबावती लोक में ठीक इसी मुद्रा में बैठे हैं और किसी भी पल वह पृथ्वी की ओर चल देंगे। इस प्रतिमा से यही धारणा स्पष्ट प्रतीत होगी।

सिया राम मैत्रेय

मैत्रेय वंशावली

गौड़ ब्राह्मण: आदि गौड़ वेद : शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा
कात्यायण सूत्र प्रवर त्रिपवर
गोत्र - मैत्रेय

पं० हुकुमचन्द जी

पं० विश्वम्भर दत्तजी (पं० भूभंर दत्त जी)

- पं० नित्यानन्द जी (धर्म पत्नी- तुलसा देवी)
  - पं० गंगा रामजी
    - पं० सोम प्रकाश (रुढ़की) (श्री मती सरस्वती)
      - आनन्द कुमार (पत्नी- मिथलेश)
      - कृष्णा (सुधीर) देहरादून
      - शशी (सहारनपुर)
      - पं० बसंत (श्रीमती देवरानी)
        - शुभ्रा
        - बेबी
    - पं० अमिताभ (श्रीमती मंजू)
      - पं० मयंक (श्रीमती पूजा)
        - पं० अच्युत
      - सुश्री अनुश्री,
    - पं० हर्षवर्धन (काशी) (श्रीमती आभा)
    - पं० अशोक (दिल्ली) श्रीमती कनक)
      - पं० शिवम
      - सुश्री अर्ची
    - पं० विक्रमादित्य (जयपुर) (श्रीमती प्रभा)
      - पं० मुदित (विभु)
      - सुश्री अंकिता (विभा)
    - सुश्री मनीषा (श्री शैलेन्द्र सोती) (बिजनौर)
      - पं०शुभांग
      - शालीन
  - पं० यमुनादत्त जी
    - पं० रामचन्द्र
    - पं० लक्ष्मण स्वरुप
    - पं० कृष्ण नारायण स्वरुप
    - पं० नारायण स्वरुप
  - पं० अम्बा प्रसाद (देहरादून) (श्री मती कमली)
    - विरेन्द्र
      - नितिका
      - नितिन
    - राकेश
      - डिम्पी
    - रवि
      - अतिका
      - एकता
      - नितेश
    - सुपुत्री (कनाडा में)
  - पं० सियाराम (काशी) (श्रीमती शान्ति)
  - सुश्री सावित्री (पं० रजनीश दीक्षित) (मुजफ्फर नगर)
    - सुधांशु
    - हिमांशु
  - सुश्री लीलावती (बिजनौर)
- पं० विद्या दत्त सुपुत्री
  - पं० मिट्ठन लाल जी (कांधला)
    - पं० दर्शनानन्द जी
      - पं० सुरेन्द्र (दे०)
      - पं० शशि (कां०)
      - पं० नरेन्द्र (देहली)
  - पं० महराज किशन
- सुपुत्री
- सुपुत्री
  - पं० शंकर लाल जी (सहारनपुर),
    - पं० मेहर चन्द्र